हिन्दी भाषा और लिपि
का
ऐतिहासिक विकास

लेखक
सत्यनारायण त्रिपाठी
एम० ए०, पी-एच० डी०
रीडर, हिन्दी विभाग
गोरखपुर विश्वविद्यालय

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

Scanned by CamScanner

अव्यय

अव्यय की सबसे बड़ी विशेषता उसकी अविकारी प्रवृत्ति है। उसमें व्याकरण सम्बन्धी परिवर्तन नहीं होते हैं—'न व्येति, विविधं विकारं न गच्छती-त्यव्ययम्।' इसलिए ऐतिहासिक विकास के कालक्रम में भी उनमें से प्रायः अनेक का रूप-परिवर्तन बहुत कम हुआ है। हिन्दी के अधिकांश अव्यय परम्परा से विकसित होकर आए हैं। विदेशी भाषाओं में अरबी-फारसी के अव्यय हिन्दी में प्रयुक्त होते हैं। यथास्थान इन पर भी विचार किया गया है। हिन्दी अव्ययों में मूल में संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण तथा अव्यय हैं। ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण अव्यय हैं—कालवाचक, स्थानवाचक, दिशावाचक और परिमाणवाचक। इनके पूर्वांश सर्वनाममूलक और उत्तरांश संस्कृत शब्द अथवा अव्यय के अवशेष हैं।

कालवाचक

आज (<प्रा० अज्ज<सं० अद्य), कल (<प्रा० कल्लं<सं० कल्यम्, श्वः), नित् (<सं० नित्यम्) आदि की व्युत्पत्ति तो स्पष्ट है किन्तु अब, जब, तब और कब का विकास सन्दिग्ध है। इनका पूर्वांश सार्वनामिक है। उत्तरांश सभी में 'ब' है। बीम्स इनका सम्बन्ध सं० वेला से जोड़ते हैं। डॉ० चटर्जी के अनुसार उत्तरांश 'ब' वैदिक एवं, एवा से विकसित है—हि० 'ब'<प्रा० एव्वं, एवं<सं० एवं<वैदिक एव, एवा। जब, कब का सम्बन्ध सं० यदा-कदा से जोड़ने का भी प्रयास किया गया है—'कुरुजांगल (करनाल रोहतक आदि) में 'यदा-कदा' को 'जद'-'कद' जैसा बोला जाता है। कुरुजनपद (मेरठ-मंडल) में 'द' को 'ब' करके 'जब'-'कब' आदि रूप हो जाते हैं।'[1]

---

[1] किशोरीदास वाजपेयी, 'हिन्दी शब्दानुशासन', पृष्ठ २५२-५३।

Scanned by CamScanner

स्थानवाचक

भीतर (< अप० भिन्तर < पा० अब्भन्तर < सं० अभ्यन्तर), बाहर (< सं० बहिः), नजदीक (फा० नज़दीक) नीचे (< सं० नीचैस्) आदि के अतिरिक्त हिन्दी के मुख्य स्थानवाचक अव्यय वहाँ, जहाँ, कहाँ, तहाँ, यहाँ हैं। बीम्स की दृष्टि में हाँ वाले इन अव्ययों की उत्पत्ति संस्कृत स्थान से है—तहाँ < तत्स्थाने। किन्तु इनके उत्तरांश का विकास संस्कृत-स्मिन् से भी माना जाता है।

यहाँ (य + इहा) < सं० यो + स्मिन्
वहाँ (व + इहा) इहा < सं०-स्मिन्
जहाँ (ज + इहा) इहा < सं०-स्मिन्
कहाँ (क + इहा) इहा < सं०-स्मिन्
तहाँ (त + इहा) इहा < सं०-स्मिन्

इनमें पूर्वांश य, व, ज, क, त सर्वनाममूलक हैं।

दिशावाचक

इधर, उधर, जिधर, तिधर, किधर दिशावाचक अव्यय हैं। बीम्स के अनुसार इनके उत्तरांश धर की उत्पत्ति संस्कृत मुख के कल्पित रूप मुखर* से है—धर < न्धर < न्हर < म्हर < सं० मुखर*। इस व्युत्पत्ति में कल्पना अधिक है इसलिए विश्वसनीय नहीं है।

रीतिवाचक

यों, ज्यों, त्यों, क्यों रीतिवाचक अव्यय हैं। इनकी भी व्युत्पत्ति स्पष्ट नहीं है। बीम्स के अनुसार इनका विकास सं० मत् < प्रा० मन्तो से हुआ है। केलाग की दृष्टि में इनकी उत्पत्ति सं० इत्थं, कथं जैसे रूपों से हुई है। चटर्जी के अनुसार इनका सम्बन्ध प्रा० भा० आ० के कल्पित रूप येव*, तेव*, केव* से है। ये रूप वैदिक भाषा के एव के अनुकरण पर कल्पित हुए हैं। अन्य रीतिवाचक अव्ययों में जानो, मानो, का सम्बन्ध क्रमशः हि० जानना, मानना से, सचमुच का सं० सत्य से और ठीक का सं० स्था से है।

अन्य अव्ययों का विकास अग्रलिखित रूप में हुआ है—

परिमाणवाचक

हि० और < प्रा० अवर < सं० अपर

हि० बहुत < प्रा० बहुत्त < पा० बहुत्तं < सं० बहुत्वम्

हि० ज्यादा < फा० ज़्यादा

हि० कम < फा० कम

हि० कुल < संभवतः सं० कुलम्

स्वीकारार्थक अव्यय

'हाँ' मुख्य स्वीकारार्थक अव्यय है। इसकी उत्पत्ति सं० आम् से मानी जाती है। हिन्दी हूँ सं० हुम् से विकसित हुआ है।

निषेधार्थक अव्यय

हिन्दी में न, ना, नहीं निषेधार्थक अव्यय हैं। ना न का विस्तृत रूप है। न सं० न से विकसित है। केलाग के अनुसार नहीं न+आहि का संयुक्त रूप है। चटर्जी की दृष्टि में नहीं का विकास इस प्रकार है--नहीं < म० भा० आ० *न-अहइ < *असति < सं० अस्ति। नहीं को न और ही का संयुक्त रूप भी माना गया है। न के बाद ही का स्वर अनुनासिक हो गया है।[1]

समुच्चय-बोधक

और, तथा, एवं समुच्चय-बोधक अव्यय हैं। तथा, एवं संस्कृत के तत्सम रूप हैं। और का विकास सं० अपरम् से हुआ है--हि० और, अवर < प्रा० अवरं < पा० अपरं < सं० अपरम्।

प्रतिषेधक-संयोजक

इस रूप में किन्तु, परन्तु, मगर, लेकिन का प्रयोग होता है। किन्तु, परन्तु संस्कृत के तत्सम रूप हैं और मगर, लेकिन अरबी-फारसी के शब्द हैं।

विभाजक अव्यय

वा, अथवा, या में वा, अथवा संस्कृत के हैं और या अरबी-शब्द है।

मुख्य विभाजक अव्यय 'कि' है। इसकी उत्पत्ति सं० किम् से हुई है--हि० कि < म० भा० आ० कि < सं० किम्। फारसी कि से भी इसका सम्बन्ध जोड़ा जाता है। चाहे भी विभाजक अव्यय है। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है--

1. पं० किशोरीदास वाजपेयी, 'हिन्दी शब्दानुशासन', पृष्ठ २५४।

Scanned by CamScanner

हि० चाहे < √चाहना < प्रा० चाहइ < सं० चक्षते ।

अनुधारणार्थक अव्यय

'तो' अनुधारणार्थक अव्यय है । इसका विकास सं० ततः से हुआ है ।

संयोजक अव्यय

कि, मानो, तथा जैसा संयोजक अव्यय हैं । 'कि' के सम्बन्ध में आ... का विचार किया जा चुका है । मानो का विकास सं० मान्यतु से हुआ है—हि० मानो < मण्णउ < सं० मान्यतु । जैसा सं० यादृश से विकसित है ।

विस्मयादिबोधक अव्यय

हाँ, अच्छा, जी हाँ वही आदि सम्मति-सूचक अव्यय हैं । हाँ की उत्पत्ति ऊपर दी जा चुकी है । अच्छा सं० अच्छः से विकसित है—हि० अच्छा < प्रा० अच्छअ < पा० अच्छो < सं० अच्छः । वही, वह सर्वनाम का रूप है । जी हाँ... जी सं० जीव से विकसित है—हि० जी < जीअ < सं० जीव ।

वाह, ओहो, शाबाश प्रशंसार्थक अव्यय हैं । वाह और शाबाश (फा० शादबाश) फारसी के हैं ।

छी छी, थू-थू, दुर-दुर विरक्ति-सूचक अव्यय हैं । छी-छी प्रा० छी-छी ... हिन्दी में विकसित हुआ है । थू-थू सं० थूत्कार से विकसित है और दुर-दुर सं० दूरः से आया है—हि० दुर < प्रा० दूर < सं० दूरः । आह (< सं० आः) और हाय् (< सं० हा) आदि कष्ट-सूचक अव्यय हैं । हैं, एँ, ओहो आदि विस्मय-सूचक अव्यय हैं । हैं, एँ का सम्बन्ध संस्कृत अइ से माना जाता है । ओहो संस्कृत अहो और ओः का सम्मिलित रूप है ।

निष्कर्ष

(१) हिन्दी के अधिकांश अव्यय संस्कृत से आए हैं । विदेशी अव्ययों में अरबी-फारसी-अव्यय मुख्य हैं ।

(२) हिन्दी अव्ययों का विकास संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण तथा अव्यय आदि से हुआ है ।

(३) हिन्दी अव्ययों में अधिकांश की व्युत्पत्ति संदिग्ध है ।

Scanned by CamScanner

१०

विशेषण

सामान्यतः सभी स्थितियों में समान रूपों का प्रयोग हिन्दी विशेषणों की प्रमुख विशेषता है। जैसे, लाल घोड़ा, लाल घोड़ी, लाल घोड़े और लाल घोड़ियाँ इत्यादि में 'लाल' विशेषण का एक ही रूप सर्वत्र प्रयुक्त होता है। किन्तु संस्कृत में विशेष्यपद के अनुसार लिंग, वचन और कारक के आधार पर विशेषणों में रूप-विकार होता है। प्राकृत, अपभ्रंश इत्यादि भाषाओं में भी कुछ न कुछ प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। हिन्दी में अपवादस्वरूप केवल आकारान्त विशेषण में लिंग एवं वचन सम्बन्धी परिवर्तन होते हैं—बड़ा घोड़ा, बड़ी घोड़ी, बड़े घोड़े। इन विकृत रूपों का विकास आकारान्त संज्ञारूपों की भाँति हुआ है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से घोड़ी आदि संज्ञापदों का स्त्रीप्रत्यय- 'ई' ही 'बड़ी' जैसे विशेषण शब्दों में भी है। इसी तरह घोड़े आदि संज्ञापदों का-'ए' प्रत्यय 'बड़े' आदि शब्दों में भी प्रयुक्त है। इसलिए विशेषण-रूपों में लिंग, वचन तथा कारक आदि की कोई भिन्न समस्या नहीं है। समानता, सादृश्य, अतिशयता, अधिकता, सर्वोत्तमता (superlative) और तुलना (Comparison) सम्बन्धी विशेषता प्रकट करने के लिए हिन्दी में विशेषणों के स्वतन्त्र रूप नहीं होते हैं। इसके लिए विशेष्यपद के साथ कारकीय विभक्ति अथवा अव्यय का प्रयोग किया जाता है। सर्वनामीय विशेषणों की स्थिति सर्वनामों जैसी है। पुरुषवाचक और निजवाचक (मैं, तुम, आप) के अतिरिक्त अन्य सर्वनामों का प्रयोग विशेषण के रूप में भी होता है। विशेषणों में विकास की दृष्टि से संख्यावाचक विशेषण ही विशेष महत्व के हैं। इसलिए यहाँ केवल उन्हीं पर विचार किया गया है।

संख्यावाचक विशेषण

इन्हें छह प्रमुख वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—गणनात्मक, भिन्नात्मक, क्रमात्मक, गुणात्मक, समुदायवाचक और समानुपातीय संख्यावाचक विशेषण।

) गणनात्मक संख्यावाचक

इसे पूर्ण संख्यावाचक विशेषण भी कहते हैं। रूपविकार की दृष्टि से इनके रूप होते हैं—स्वतन्त्र और संयुक्त। गणनात्मक विशेषणों के इन दोनों रूपों विकास-क्रम इस प्रकार है—

स्वतन्त्ररूप—हि० एक < प्रा० एक्क < सं० एक।

संयुक्तरूप—हिन्दी एक के दो संयुक्त रूप हैं—ग्या-(ग्यारह) और इक-कीस, इकतीस इत्यादि)। 'ग्या' एक का असाधारण रूप है। विद्वानों का मान है कि इस पर सं० एक के म० भा० आ० एग रूप का प्रभाव है—एकादश > म० भा० आ० एगारह, एआरह > हि० ग्यारह। दूसरे रूप में त्मक स्वराघात के कारण एक का ए इक् के इ में परिवर्तित हो गया है।

स्वतन्त्ररूप—हि० दो < प्रा० दो < सं० द्वौ। संस्कृत द्वौ में द् और व् दो जन हैं। विकासक्रम से आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में ये स्वतन्त्र रूप से क अर्थ में प्रयुक्त होने लगे। हिन्दी के स्वतन्त्र रूप में व् समाप्त होकर द् गया और उससे दो हुआ। गुजराती में द् समाप्त हो गया और शेष व् से (दो) हुआ।

संयुक्तरूप—संयुक्तरूपों के लिए हिन्दी ने द् के स्थान पर ब् को अपनाया। , बारह, बाइस इत्यादि। इस तरह स्वतन्त्ररूप दो की भाँति संयुक्तरूप बा संस्कृत द्वौ से ही विकसित हुआ है। सामासिक शब्दों में दो (दोपहर) के तिरिक्त दो का रूपान्तर दु (दुहरा आदि) भी प्रयुक्त होता है।

स्वतन्त्ररूप—हि० तीन < म० भा० आ० तिण्णि < *तीर्णि[1] < सं० त्रीणि।

संयुक्तरूप—संयुक्तरूप में तीन 'ते-' (तेरह < म० भा० आ० तेरह < सं० योदश), 'तें-' (तेंतीस < म० भा० आ० तेत्तीसा < सं० त्रयस्त्रिंशत्), 'ति-'

---

1. ध्वनिविकास की सामान्य प्रवृत्ति के अनुसार सं० त्रीणि से प्रा० तिण्णि का विकास सम्भव नहीं है। इसलिए तीर्णि रूप की कल्पना करनी पड़ी है।

Scanned by CamScanner

(तितालीस<म० भा० आ० तेआलीसा<सं० त्रिचत्वारिंशत्) और (तिरपन<म० भा० आ० तेवण<सं० त्रिपञ्चाशत्) रूपों में परिवर्तित हो जाता है। ये सभी रूप सं० त्रि के रूपान्तर हैं।

सामासिक शब्दों में ति का प्रयोग होता है—तिहाई (<म० भा० आ० तिहाइअ<सं० त्रिभागिक), तिपाई (<सं० त्रिपादिका) इत्यादि।

चार

स्वतन्त्ररूप—हि० चार<पुरानी हिन्दी च्यारि<अप० चारि<प्रा० चत्तारि<सं० चत्वारि।

संयुक्तरूप—संयुक्त संख्याओं में 'चौ', 'चौं', और 'चौर' रूप प्रयुक्त होते हैं। जैसे—हि० चौदह<म० भा० आ० चउदह<सं० चतुर्दश, हि० चौंतीस<म० भा० आ० चौंतीसं<सं० चतुस्त्रिंशत् तथा हि० चौरासी<म० भा० आ० चउरासीइ<सं० चतुरशीति। इन रूपों का सम्बन्ध सं० चतुर्<प्रा० चउरो से है। सामासिक शब्दों में प्रायः चौ का प्रयोग होता है—चौमासा, चौपाई इत्यादि।

पाँच

स्वतंत्ररूप—हि० पाँच<म० भा० आ० पंच<सं० पञ्च।

संयुक्तरूप—संयुक्तरूपों में पन् (हि० पन्द्रह<म० भा० आ० पणरह<सं० पञ्चदश), वन् (हि० इक्कावन<म० भा० आ० एक्कावण्णं<सं० एकपञ्चाशत्), अन् (हि० चौअन<म० भा० आ० * चउप्पण<सं० चतुःपञ्चाशत्) अथवा पैं (हि० पैंतिस<म० भा० आ० पन्नतीसं पणतीसं<सं० पञ्चत्रिंशत्) प्रयुक्त होता है। इनका सम्बन्ध सं० पञ्च, प्रा० पण से है। सामासिक शब्दों में पच अथवा पँच आता है—पचलड़ी, पँचमेल इत्यादि।

छः अथवा छह

स्वतंत्ररूप—हि० छः, छह<म० भा० आ० छ<सं० षट् (* षष्, क्षष् *क्षक्)।

संयुक्तरूप—संयुक्त संख्याओं में छ रूप प्रयुक्त होता है—छब्बीस, छत्तीस

१. रूपपरिवर्तन की दृष्टि से छः की व्युत्पत्ति सं० षट् से संभव नहीं प्रतीत होती है। इसलिए प्रा० भा० आ० के षष्, क्षष्, या क्षक् रूप की कल्पना की गई है।

हि। इसके अतिरिक्त छियालिस और सोलह में संयुक्तरूप मिलते हैं। सोलह
सोडश<प्रा० सोलह से संबन्धित है।

स्वतंत्ररूप—हि० सात<प्रा० सत्त<सं० सप्त।
संयुक्तरूप—संयुक्त संख्यारूपों में सत्त, सत्, सैं, सड़ रूप प्रयुक्त होते हैं।
सत्ताइस, सतावन, सैंतीस, सड़सठ इत्यादि।
सत्त या सत् तो इसी सात का प्राकृत रूप है। सैं में अनुनासिकता
न के प्रभाव से है और सड़सठ या सरसठ का सड़ अथवा सर अडसठ से
वित है।

स्वतन्त्ररूप—हि० आठ<म० भा० आ० अट्ठ<सं० अष्ट।
संयुक्तरूप—संयुक्त संख्यारूपों में अट्ठ अठा, अठ इत्यादि का प्रयोग होता
अट्ठाइस, अठासी, अठहत्तर इत्यादि। अड़तीस, अड़तालीस आदि में अठ>
हो जाता है। यह असाधारण परिवर्तन है!

स्वतन्त्ररूप—हि० नौ<म० भा० आ० नअ, नउ<सं० नव।
संयुक्तरूप—संयुक्त संख्याओं में नौ के स्थान पर 'उन्' का प्रयोग होता
उन्नीस, उनतीस इत्यादि। इस उन् का विकास सं० ऊन (=कम) से हुआ
हि० उन्<प्रा० ऊण<सं० ऊन।

स्वतन्त्ररूप—हिन्दी दस सं० दश से विकसित हुआ है—हि० दस<प्रा०
<सं० दश।
संयुक्तरूप—ग्यारह, चौदह, सोलह आदि संयुक्त सख्याओं में यह रह,
रह रूपों में प्रयुक्त होता है। ये संयुक्त रूप प्राकृत में उपलब्ध होते हैं
वहीं से सीधे हिन्दी में ले लिये गये हैं। दह सं० दश से विकसित हुआ है।
प्राकृत रह में संस्कृत दश के द का र कैसे हुआ यह स्पष्ट नहीं है।

स्वतन्त्ररूप—हि० बीस<प्रा० बीस, पाली वीसति<सं० विंशति। जैसे—

Scanned by CamScanner